**ओ३म्**

**‘सभी चार आश्रमों में श्रेष्ठ व ज्येष्ठ गृहस्थाश्रम’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

वैदिक जीवन चार आश्रम और चार वर्णों पर केन्द्रित व्यवस्था व प्रणाली है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास यह चार आश्रम हैं और शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण यह चार वर्ण कहलाते हैं। जन्म के समय सभी बच्चे शूद्र पैदा होते हैं। गुरूकुल व विद्यालय में अध्ययन कर उनके जैसे गुण-कर्म-स्वभाव व योग्यता होती है उसके अनुसार ही उन्हें वैश्य, क्षत्रिय या ब्राह्मण वर्ण आचार्यों व शासन व्यवस्था द्वारा दिये जाने का विधान वैदिक काल में था जो महाभारत काल के बाद जन्म के आधार पर अनेक जातियों में परिवर्तित हो गया। वेदानुसार चार वर्ण मनुष्यों के गुण, कर्म व स्वभाव पर आधारित हैं तो चार आश्रम मनुष्य की औसत वायु लगभग 100 वर्ष के पच्चीस पच्चीस वर्ष के क्रमशः चार सोपान व भाग हैं। प्रथम भाग जन्म से आरम्भ होकर लगभग 25 वर्षों तक का होता है जिसे आयु का **ब्रह्मचर्यकाल** कहते हैं। जीवन के ब्रह्मचर्यकाल में सन्तान व व्यक्ति को माता-पिता-आचार्य के सहयोग से पूर्ण ब्रह्मचर्य अर्थात् सभी इन्द्रियों के संयम, तप व पुरुषार्थ को करते हुए अधिक से अधिक विद्याओं जिनमें वेदाध्ययन प्रमुख है, का अर्जन करना होता है। कन्याओं के लिए यह आयु 16 वर्ष या कुछ अधिक होती है क्योंकि वैदिक व्यवस्था में युवक द्वारा न्यूनतम पच्चीस वर्ष और कन्या की आयु 16 वर्ष की हो जाने पर उन्हें विवाह करने की अनुमति है। **विवाह का होना गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना होता है।** विवाह के बाद जो मुख्य कार्य करने होते हैं उसमें ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करते हुए आजीविका का चयन और उसका निर्वाह करने के साथ धर्म पूर्वक अर्थात् शास्त्रीय नियमों का पालन करते हुए श्रेष्ठ सन्तानों को उत्पन्न करना, उनका पालन करना व उनके अध्ययन आदि की व्यवस्था करना होता है। गृहस्थ आश्रमी व्यक्ति को इसके साथ नियत समय पर प्रातः सायं योग दर्शन पद्धति व महर्षि दयानन्द निर्दिष्ट वेद विधि से प्रातःसायं ईश्वरोपासना, दैनिक यज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथि यज्ञ एवं बलिवैश्वदेव यज्ञ भी यथासमय व यथाशक्ति करने होते हैं। गृहस्थ आश्रम में रहते हुए सभी स्त्री पुरुषों को सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य व्यवहार करने के साथ देश व समाज सेवा के श्रेष्ठ कार्यों यथा वेद विद्या के अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ व परोपकार आदि कार्यों में यथाशक्ति दान व सहयोग भी करना होता है। 50 वर्ष की आयु तक गृहस्थ जीवन में रहकर जब पुत्र पुत्रियों के विवाह हो जाये और सिर के बाल श्वेत होने लगे तब गृहस्थ जीवन का त्याग कर वन में जाकर स्वाध्याय व शास्त्रों का अध्ययन करते हुए ईश्वर प्राप्ति की साधना में समय व्यतीत करना होता है। 25 वर्षों तक इन कार्यों का अभ्यास कर संन्यास लेने का विधान है जिसमें सभी उत्तरदायित्वों से पृथक, निवृत वा उनका त्याग कर देश व समाज के कल्याण की भावना से सद्ज्ञान वेदों की शिक्षाओं का गृहस्थियों में प्रचार प्रसार करना होता है। इस संन्यास आश्रम की स्थिति में भी अधिक ध्यान ईश्वर प्राप्ति के लिए साधना में लगाना होता है क्योंकि ईश्वर साक्षात्कार कर अपना परलोक सुधार करना भी मनुष्य व जीवात्मा का प्रमुख कर्तव्य है। इस प्रकार से वेदों से पुष्ट चार आश्रमों का विधान वैदिक आश्रम व्यवस्था कहलाता है जो समूचे मानव समाज में सर्वत्र किंचित भिन्न भिन्न रूपों में आज भी विद्यमान दृष्टिगोचर होता है और यही सर्वाधिक श्रेष्ठतम सामाजिक व्यवस्था है।

**मनमोहन कुमार आर्य**

 महर्षि दयानन्द (1825-1883) के समय में देशवासी अन्धविश्वासों व विदेशियों की दासता से ग्रसित थे और आश्रम व्यवस्था का महत्व भूल चुके थे। जो व्यक्ति जिस अवस्था में होता था उसी को श्रेष्ठ व ज्येष्ठ मानता था। ब्रह्चारी स्वयं को चारों आश्रमों में ज्येष्ठ व श्रेष्ठ तथा वानप्रस्थी व संन्यासी अपने अपने को ज्येष्ठ व श्रेष्ठ मानते थे। गृहस्थी क्योंकि प्रायः युवा होते थे अतः वह अपने से अधिक आयु वाले वानप्रस्थियों व संन्यासियों को इस बारे में कुछ कह नहीं सकते थे और इस विषयक शास्त्रीय व प्रमाणित सोच व विचार भी उनमें नहीं था। हमारे शास्त्रों में गुरूकुल में अध्ययनरत ब्रह्मारियों को विशेष महत्व दिया गया है। शास्त्र कहते हैं कि यदि ब्रह्मचारी किसी रथ में कहीं जा रहा है और सामने राजा व अन्य लोग मार्ग में किसी चैराहे पर आ जाये तो उस अवस्था में पहले जाने का अधिकार ब्रह्मचारी का होता है। इसका कारण विद्या को महत्व दिया जाना है। यह एक प्रकार से हमारे देश में वेद विद्या को महत्व प्रदान करने के कारण व्यवस्था दी गई थी जो युक्ति व तर्क संगत है। इन सब परिस्थितियों को जानते समझते हुए जब महर्षि दयानन्द ने सन् 1874 व 1883 में आदिम सत्यार्थ प्रकाश व उसके संशोधित संस्करण तैयार किये तो उन्होंने भी चार आश्रमों में ज्येष्ठ आश्रम कौन सा है? इस पर भी विचार किया। उनके विचार तर्क व युक्ति संगत एवं स्थिति का नीर क्षीर व सारगर्भित विश्लेषण करते हैं। पाठकों के लाभार्थ उनके विचार प्रस्तुत हैं।

 सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ का चौथा समुल्लास समावर्तन, विवाह और गृहस्थाश्रम पर महर्षि दयानन्द का वैदिक मान्यताओं पर उपदेश है। इस समुल्लास के अन्त में उन्होंने गृहस्थाश्रम पर प्रश्न करते हुए कहा कि **गृहाश्रम सब से छोटा वा बड़ा है?** इसका उत्तर देते हुए वह लिखते हैं कि **अपने-अपने कर्तव्यकर्मों में सब बड़े हैं।** परन्तु यथा **नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्। तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।।1।। यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः। तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः।।2।। यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्। गृहस्थेनैव धारयन्ते तस्माज्जयेष्ठाश्रमो गृही।।3।। स संधारय्य: प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता। सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः।।4।। (यह चारों मनुस्मृति के श्लोक हैं)।**

मनुस्मृति के इन चार श्लोकों का अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि जैसे नदी और बड़े-बड़े नद तब तक भ्रमते ही रहते हैं जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं होते, वैसे गृहस्थ ही के आश्रय से सब आश्रम स्थिर रहते हैं।।1।। बिना इस आश्रम के किसी आश्रम का कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता है।।2।। **जिस से ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी तीन आश्रमों को दान और अन्नादि देके प्रतिदिन गृहस्थ ही धारण करता है इससे गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम है, अर्थात् सब व्यवहारों में धुरन्धर कहाता है**।।3।। इसलिये जो (अक्षय) मोक्ष और संसार के सुख की इच्छा करता हो वह प्रयत्न से गृहाश्रम का धारण करे। जो गृहाश्रम दुर्बलेन्द्रिय अर्थात् भीरु और निर्बल पुरुषों से धारण करने के योग्य नहीं है उसको (भीरु व निर्बल लोगों से इतर स्त्री पुरुष) अच्छे प्रकार धारण करे।।4।। महर्षि दयानन्द आगे लिखते हैं कि इसलिये जितना कुछ व्यवहार संसार में है उस का आधार गृहाश्रम है। **जो यह गृहाश्रम न होता तो सन्तानोत्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम कहां से हो सकते? जो कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है वही निन्दनीय है और जो प्रशंसा करता है वही प्रशंसनीय है। परन्तु तभी गृहाश्रम में सुख होता है जब स्त्री पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, विद्वान, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहार के ज्ञाता हों। इसलिये गृहाश्रम के सुख का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य (सभी इन्द्रियों व इच्छाओं का संयम व उन पर नियंत्रण) और पूर्वोक्त स्वयंवर (आजकल प्रचलित नाम लव मैरिज) विवाह है।**

 गृहस्थाश्रम की ज्येष्ठता के विषय में महर्षि दयानन्द के समय में जो भ्रान्ति थी उसको उन्होंने सदा सदा के लिए दूर कर दिया। महर्षि दयानन्द के इन विचारों को भारतीय वा हिन्दू मत ने पूर्णतः स्वीकार किया है, यह अच्छी प्रशंसनीय बात है। यदि हमारा हिन्दू समाज मूर्तिपूजा, अवतारवाद, फलितज्योतिष, मृतक श्राद्ध को छोड़कर वैदिक मान्यताओं को अपना ले तथा विवाह में जन्मपत्री को महत्व न देकर युवक व युवती के गुणकर्मस्वभाव को महत्व दें और जन्मना जाति प्रथा को समाप्त कर दें, तो देश व समाज को बहुत लाभ हो सकता है क्योंकि पौराणिक मान्यताओं का आधार सत्य पर नहीं है जिसे महर्षि दयानन्द ने अपने समय में शास्त्रीय प्रमाणों के साथ युक्ति व तर्क से भी सिद्ध किया है। यहां यह भी ध्यान देने योग्य है कि गृहस्थाश्रम में रहते हुए मनुष्यों को लोभी व स्वार्थी न होकर दानी व परोपकारी होना चाहिये, यही प्रत्येक व्यक्ति के निजी व समाज के हित में होता है। दूसरी महत्वपूर्ण बात है कि गृहस्थ में रहते हुए सभी को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये जिससे सभी निरोगी होकर दीघार्य हों। आज रोगों व अल्पायुष्य का कारण हमारा दूषित खान-पान, अनियमित दिनचर्या, बड़ी बड़ी महत्वाकांक्षाओं संबंधी तनाव एवं वैदिक जीवन मूल्यों से दूर जाना है। वैदिक मूल्य वा वैदिक जीवन पद्धति ही आज की समस्त समस्याओं का एकमात्र निदान है। आईये, वेद की शरण लेकर जीवन को सुखी व जीवन के लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति की ओर आगे बढ़ें व उसे प्राप्त करें।

 **-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**